षष्ठ अध्याय

अमृतलाल नागर और गंगाप्रसाद मिश्र के कथा साहित्य में भाषा-शिल्प

षष्ठ अध्याय

अमृतलाल नागर और गंगाप्रसाद मिश्र के कथा साहित्य में भाषा-शिल्प

भूमिका :

१.१ शिल्प सौष्ठव

१.२ अमृतलाल नागर के कथा साहित्य में भाषा-शिल्प

१.३ अमृतलाल नागर के उपन्यासों में भाषा-शिल्प

क. महाकाल (१९७० में 'भूख' शीर्षक से प्रकाशित)

ख. सेठ बाँकेमल

ग. बूँद और समुद्र

घ. शतरंज के मोहरे

च. बिखरे तिनके

१.४ नागरजी के बालकथा साहित्य में भाषा-शिल्प

१.५ गंगाप्रसाद मिश्र के कथा-साहित्य में भाषा-शिल्प

१.६ गंगाप्रसाद मिश्र के उपन्यासों में भाषा-शिल्प

क. विराग

ख. संघर्षों के बीच

ग. तस्वीरें और साये

घ. सोनारवाणी के पार

१.७ गंगाप्रसाद मिश्र के बालसाहित्य में भाषा-शिल्प

१.८ नागरजी और गंगाप्रसाद मिश्र का भाषा-शिल्प

१.९ अमृतलाल नागर और गंगाप्रसाद मिश्र के कथा-लेखन में नगरीय-आंचलि**कता**

१.१० निष्कर्ष

१.११ संदर्भ ग्रंथ

षष्ठ अध्याय

अमृतलाल नागर और गंगाप्रसाद मिश्र के कथा साहित्य में भाषा-शिल्प

भूमिका :

अमृतलाल नागर और गंगाप्रसाद मिश्र दोनों ही कथाकारों ने बचपन से ही लखनऊ के अपने आस-पास के वातावरण और जन-जीवन, चरित्रों, पात्रों आदि को बराबर देखा और जिया है। अतः इन दोनों के ही प्रारम्भिक रचनाओं में कथ्य और कथानक के रूप में तो लखनऊ है ही, यहाँ का वातावरण, बोली-बानी, भाव भंगिमा और पात्रों, चरित्रों का प्रस्तुतीकरण भी बहुत जीवन्त हुआ है। नागरजी की कहानी 'शकीला की माँ' और उपन्यास की श्रेणी में गिनी जाती रचना 'नवाबी मसनद' इसके महत्वपूर्ण उदाहरण है। इसी प्रकार गंगाप्रसाद मिश्र की कहानियाँ 'आडम्बर', 'मिलन', 'महराजिन' आदि के साथ उनके प्रारम्भिक दोनों उपन्यास 'विराग' और 'संघर्षों के बीच' लखनऊ के जीवन्त-चित्रण के उदाहरण है। लखनऊ के दोनों कथाकार नगरीय-आंचलिकता को अपनी कहानी और उपन्यास लिखने वाले ऐसे लेखक हैं कि इनसे पहले हिन्दी में इनके जैसी नगरीय-आंचलिकता अन्य किसी लेखक के यहाँ उभरकर नहीं आयी है। कई मायनों में तो गंगाप्रसाद मिश्र के यहाँ नगरीय-आंचलिकता नागरजी से पहले बहुत यथार्थ और प्राणवन्त रूप में 'विराग', 'संघर्षों के बीच' तथा 'महिमा' में उभरकर आयी है। इसके विपरीत अमृतलाल नागर कृत 'नवाबी मसनद' उनके द्वारा संपादित और प्रकाशित पत्रिका 'चकल्लस' का एक हास्य-व्यंग परक स्तंभ के रूप में ऐसी बोलचाल की उर्दू भाषा और शैली की रवानी लिए हुए प्रस्तुत होता है, जिसमें नवाबी दौर का पतनशील लखनऊ उभरकर आता है।

१.१ शिल्प सौष्ठव

किसी भी साहित्यिक विधा में उसके शिल्प का बड़ा महत्व होता है। दर असल कथा साहित्य के शिल्प के संबंध में तो अजीब बात यह है कि उसका शिल्प निरंतर विकासमान रहता है उसमें भी उपन्यास के शिल्प में जितने नए प्रयोग हुए है, शायद उतने अन्य किसी विधा में नहीं। वस्तु और शिल्प के संबंधों की चर्चा प्रकरांतर से विवाद का विषय रही है। शिल्प और वास्तु की एकात्मकता अथवा एकरूपता तथा अलग-अलग रूपों एवं विचारों के संबंध में विद्वानों के मतभेद है। प्रस्तुत अध्याय में मोटे-तौर पर उपन्यास के शिल्प पर विचार किया

जायेगा।

हिंदी उपन्यास का शिल्प अपने प्रारंभिक काल से लेकर आज तक प्रयोग के अनेक मोड़ों से गुजरते हुए निरंतर प्रवाहमान है। कहना न होगा कि शिल्प की सफलता रचना की उत्कृष्टता एवं सफल कलात्मकता की दृष्टि से बड़ा कमजोर रहा है। औपन्यासिक रचनाओं का शिल्प कलात्मकता की दृष्टि से बड़ा कमजोर रहा है। प्रेमचंद के आगमन से औपन्यासिक धारा व्यवस्थित एवं महत्वपूर्ण बनी और उसके बाद तो उपन्यास की धारा निरंतर सशक्त होती गई। उपन्यास की कई दिशाएं एवं रूप दिखाई देने लगे। हिंदी उपन्यास का विकास बहुमुखी हुआ है। शिल्प, शैली, कथ्य आदि सभी दृष्टियों से उसमें विकास होता आया है। उपन्यास निरंतर संघर्ष के साथ साथ की अपनी रूढ़ियों का विरोध करके ही आगे बढ़ा है। यह बात उपन्यास के इतिहास के अवलोकन से स्पष्ट हो जाती है।

'शिल्प' शब्द का शाब्दिक अर्थ संस्कृत कोश में शिल्प (शील+प) को मूर्तिकला, कारीगरी हुनर कहा गया है।"[1] दूसरे संस्कृत शब्दकोश में- 'शिल्पम्' शब्द का अर्थ (शिल+पक्) कारीगरी, फॉर्म, क्राफ्ट आदि दिया गया है।[2] अंग्रेजी शब्द 'तकनीक' का हिन्दी अनुवाद 'शिल्प' किया जाता है।

'आक्सफोर्ड डिक्शनरी' में शिल्प का अर्थ इस प्रकार दिया गया है- "कलात्मक कार्यविधि की वह पद्धति जो संगीत अथवा चित्रकला में प्राप्य है "[3] शिल्प शब्द की बृहद हिन्दी कोशगत व्याख्या इस प्रकार है- "किसी चीज को बनाने या रखने का ढंग अथवा तरीका। किसी वस्तु के रचने की जो-जो विधियां अथवा प्रतिक्रियाएँ है, उनके समुच्चय को ही शिल्प विधि के नाम से पुकारा जाता है।"[4]

इससे स्पष्ट है कि शिल्प का अर्थ रीति, विधि या विधान होता है। यानी साहित्यिक कृति या कलात्मक वस्तु के रचने का ढंग या तरीका।

वैसे शिल्प शब्द का प्रयोग हस्तकला के क्षेत्र में सदियों से होता आया है। इस क्षेत्र में पत्थर, लकड़ी, मिट्टी आदि से चीजें, बर्तन, गहनें आदि बनाए जाते है। ये चीजें जिस कौशल से बनाई जाती है, उसी से शिल्प शब्द का संबंध रहा है। साहित्य में जब से रचना कौशल यानी साहित्यिक सौन्दर्य का विवेचन होने लगा, तब से हस्तकला के क्षेत्र के इस शब्द का प्रयोग साहित्य में होने लगा। हस्तकला के क्षेत्र के इस शब्द का अर्थ साहित्यिक अर्थ से अलग है।

साहित्यिक शिल्प लगातार परिवर्तित होता रहता है। साहित्यिक सृजन में जैसे-जैसे परिवर्तन होता गया, वैसे-वैसे इस साहित्यिक शिल्प का रूप भी बदलता गया। विषय वस्तु में समय के अनुसार बदलाव होता रहता है, इसीलिए साहित्यिक शिल्प किसी एक निश्चित रूप को लेकर स्थिर नहीं रहता, बल्कि लगातार परिवर्तित होता रहता है। यही कारण है कि साहित्य में शिल्प की चर्चा या विश्लेषण करते समय विभिन्न विद्वानों ने, अपने-अपने दृष्टिकोण से उसे जाँचा-परखा और उसी के अनुरूप शिल्प की व्याख्या की है। यों भी 'शिल्प' की कोई एक निश्चित व्याख्या संभव नहीं।

साहित्य में 'शिल्प' का स्थान क्या है और उसका महत्व कितना है, जैसे प्रश्नों के उत्तर जानने से ही 'शिल्प' के स्वरूप की पहचान हो सकेगी, भले ही प्राचीन भारतीय कला सूची में साहित्य का नाम नदारद हो, पर अब यह मानने में संकोच नहीं करना चाहिए की साहित्य एक कला है। अतः साहित्य और कला दोनों का घनिष्ठ संबंध है।

साहित्य की विविध विधाओं में शिल्प रूप अलग अलग होता है, एक जैसा नहीं। जैसे "नाटक, कहानी, उपन्यास आदि के अपने-अपने विशिष्ट रूप कला विषयक सिद्धांत तथा मूल्य हैं, इसलिए उपन्यास का शिल्प नाटक और कहानी के शिल्प से भिन्न है और नाटक का शिल्प कहानी के शिल्प से भिन्न है।[5] इससे यह स्पष्ट है कि शिल्प भी एक विधा विशेष है। साहित्य की सभी विधाओं में 'शिल्प' का महत्व है।

१.२ अमृतलाल नागर के कथा साहित्य में भाषा-शिल्प

इससे पूर्व की उपरिलिखित विवेचन में अमृतलाल नागर के लखनऊ के कथाक्षेत्र को रेखांकित करने के साथ ही उनकी नगरीय-आंचलिकता के लेखन और उनके कथा-साहित्य में लखनऊ के परिक्षेत्र आदि की चर्चा की गई है। नागरजी जिस क्षेत्र में रहते हैं, उसमें हिन्दुओं में खत्री, कायस्थ, ब्राह्मण और पिछड़ी व अनुसूचित जातियों के लोग हैं। इन सबकी अपनी जो भी भाषा-शैली या बोली है, उसमें नवाबी दौर के लखनऊ के अवशिष्ट प्रभाव मौजूद हैं, जिसमें नागरजी का कोई भी पात्र जब बोलता है, उसमें उसकी अपनी संस्कारगत बोली-भाषा के साथ में इस इलाके में प्रचलित आम-फहम-उर्दू शब्द भी आ जाते हैं। खत्री परिवार की महिलाओं के बोली में उर्दू शब्दों का प्रयोग अपवाद स्वरूप ही मिलता है क्योंकि; उनकी मुस्लिम समाज से मिलने-जुलने और उनके यहॉं आवा-जाही बहुत सीमित रही है। इसी तरह ब्राह्मण, कायस्थ और

अनुसूचित जातियों की स्त्रियों की भाषाओं और बोली-बानी में अपनी जातीय संस्कार का प्रभाव ज्यादा है तो सामान्यतः प्रचलित उर्दू शब्दावली का बहुत कम। परन्तु नागरजी के ब्राह्मण, खत्री, पिछड़ी जाति या अनुसूचित जाति के पात्रों की भाषा-शैली और बोली में 'चौक' क्षेत्र में मुस्लिम बहुल आबादी के आम-फहम-उर्दू शब्द सहज रूप में प्रस्तुत होते हैं; खास करके कायस्थ, ब्राह्मण और खत्री परिवारों के पुरुषों में, इसलिए आजादी से पहले इन जातियों के युवक-युवकों का एक बड़ी आबादी हिन्दी अंग्रेजी के साथ किसी हद तक उर्दू-भाषा भी सीखी हुई रही है। अतः इन सभी जातियों और वर्गों के स्त्री हो या पुरुष, नवोढ़ाएँ हो या कुछ अधिक उम्र की अथवा उम्रदराज बड़ी-बुढ़ियाँ अमृतलाल नागर के कहानियों और उपन्यासों में इन सबकी बोली और लहजे नागरजी बहुत स्वाभाविक अंदाज में प्रस्तुत करते हैं। यह इसलिए है कि अपने 'चौक' क्षेत्र के परिवेश को, हर तरह के पात्रों, चरित्रों के बोली-बानी को नागरजी ने बहुत गहरी पर्यवेक्षक-दृष्टि के साथ न केवल देखा है बल्कि; उसे आत्मसात कर लिया है। इसीलिए उनके हर तरह के पात्रों और चरित्रों की भाषा और बोली-बानी हू-ब-हू उनेक कथा-साहित्य में आती है क्योंकि; नागरजी अपनी कहानियाँ और उपन्यास बोलकर लिखवाने के अभ्यस्त रहें हैं। अतः किसी भी पात्र के बारीक लहजे तक को वह उसके संवाद में प्रस्तुत कर देते हैं।

परन्तु यह विशेषता नागरजी के कथा-साहित्य की एक बड़ी सीमा भी है। वह इसलिए कि १९५६-'६० के बाद जब वह पूरी तरह पूर्णकालिक लेखक के रूप में कहानियाँ, उपन्यास आदि लिखने लगे तो जिस तरह वह पहले 'चौक' क्षेत्र के लोगों के बीच जाकर के उनके वातावरण, परिवेश, बोलचाल आदि को आत्मसात कर लेते थे, पूर्णकालिक लेखक हो जाने के बाद उस सबको वह उतने नजदीक से देख-घूम और जानकर आत्मसात करने के अवसर कम ही निकाल पाते थे। यही वजह है कि नागरजी के अपने 'चौक' क्षेत्र की बोली-बानी और लहजे उनके संपूर्ण कथा-साहित्य में १९५५-५६ से पहले के हैं। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों 'सुहाग के नुपूर', 'एकदा नैमिषारण्ये', 'अग्निगर्भा', 'शतरंज के मोहरे', 'सात घूँघट वाला मुखड़ा', 'मानस का हंस', 'नाच्यों बहुत गोपाल' में चूँकी उपन्यास का कथ्य और कालखण्ड उनके 'चौक' क्षेत्रीय कथा और वातावरण से अलग है, तो इन उपन्यासों और चौक क्षेत्रतर कहानियों में भी नागरजी की भाषा-शैली रचना के अनुकूल रही है। 'बिखरे तिनके' और 'अग्निगर्भा' भी नागरजी की 'चौक' क्षेत्रीय परिवेश और बोली-बानी से बहुत हद तक मुक्त हैं।

१.३ अमृतलाल नागर के उपन्यासों में भाषा-शिल्प

भाषा भावों और विचारों की संवाहिका है। उसके अभाव में साहित्यकार के लिए अपनी पूरी रचनात्मक सामग्री को संप्रेष्य बनाकर उसे पाठकीय संवेदना से जोड़ सकना अकल्पनीय है। कथा साहित्य में भाषिक संरचना के स्तर पर लेखकीय दायित्व अपेक्षाकृत बढ़ जाता है, क्योंकि कथाकार को निजी सर्जनात्मक व्यक्तित्व की अभिव्यंजना करने के साथ ही परिवेश के दबाव और विभिन्न पात्रों की व्यक्तिगत निजता को रूपाकर देते हुए भाषा को संवारना पड़ता है। कथाकृतियों में भाषा की जीवंतता और सार्थकता तभी सिद्ध हो पाती है जब वह साहित्यकार की अपनी भावात्मक प्रक्रिया में (दली) होने के साथ ही जन समाज की भाषा से भी अपनी घनिष्ठ संपृक्ति जताती रहे। जब तक लेखक को पात्रों के जीवन की, बोलचाल की, रंग-ढंग की, रीत-रिवाज की, पूरी तरह जानकारी ना हो जाए, तब तक उसे लेखन में मजा नहीं आता।

नागरजी की भाषा उनके भावों और उद्देश्यों की वाहिका है। वे सहज भाषा के समर्थक हैं किन्तु उनके साहित्य में भाषा के इतने विपुल रूप दृष्टिगत होते हैं कि पात्र के स्तर, उसकी परिस्थिति तक चित्रित हो जाती है। किसी भी रचना की सशक्तता, सफलता, संप्रेषणीयता उसकी भाषा की शक्ति पर निर्भर करती है। भाषा का औचित्य और सार्थकता मानव के हर रूप विचार के साथ जुड़े हुए हैं। साहित्यिक भाषा अपनी युगीन प्रवृतियों से प्रभावित अवश्य होती है। किन्तु मुख्य रुप से रचनाकार का व्यक्तित्व अपने जीवन दर्शन और उद्देश्यों की संप्रेषणीयता के अनुसार उसे आत्मसात कर लेता है। फलत: भाषा की सशक्तता और स्वरूप, परिवर्तनशीलता को अक्षुण्ण रखते हुए ही रचनाकार की प्रतिभा के अनुसार निर्मित हो जाते हैं। भाषा पात्रों के व्यक्तित्व को मूर्तिमान करती है और विभिन्न परिस्थितियों का अंतरंग चित्रण कर उसका निरीक्षण एवं व्याख्या प्रस्तुत करती है। अपने विभिन्न अनुभव तथा अनुभूतियों की अभिव्यक्ति कलात्मकता से भाषा द्वारा ही संप्रेषित की जाती हैं।

भावों तथा विचारों की अभिव्यक्ति के सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम के रूप में न केवल उपन्यास लेखन के संदर्भ में, वरन् साहित्य मात्र की रचना के संदर्भ में भाषा का महत्व असंदिग्ध है। भाषा के बिना साहित्य रचना की कल्पना ही नहीं कि जा सकती। रचनाकार को कृत के अंतर्गत जो कुछ भी कहना होता है, वह भाषा के माध्यम से ही कहता है और उसी माध्यम का असर लेकर पाठक, रचनाकार के उद्देश्य सामने लाने वाली उसकी समूची रचनात्मक सामग्री के साथ अपना अंतरंग संबंध स्थापित करता है। नागरजी ने नारी की आर्थिक स्वतंत्रता का नारा

लगवाया है। धन-संपदा का अति उपभोग मनुष्य को अवश्य ही नीचे गिरा देता है। इस पर नागरजी ने सज्जन को उदाहरण स्वरुप रखकर विशेष बल प्रदान किया है। सज्जन में मनुष्य का वह प्रचलित दीपक अपनी संपूर्ण आभा एवं प्रकाश के साथ विद्यमान है, पर वैभव उपभोग की विषाक्त काली धूप उसे तब तक ढँके रहती है। जब तक उसे उस वातावरण से अरुचि नहीं उत्पन्न हो जाती है। वह शराब पियेगा, वह मिसेज राजदान उर्फ चित्रा से संभोग करेगा ही क्योंकि; उसके पास पैसा है, क्योंकि पैसे में तद्विषयक गुण विद्यमान है। परंतु वह साम्यवादी धारा के प्रतीक वनकन्या के सम्मुख नतमस्तक है, जहाँ उसके पैसे की दाल नहीं गलती व वनकन्या के सामने यदि कुछ प्रभावकारी सिद्ध होता है तो केवल मनुष्य का निजी गुण, निजी व्यक्तित्व।

"नागरजी हिन्दी के उन थोड़े से लेखकों में हैं जिनका भाषा संबंधी ज्ञान पर्याप्त व्यापक है। गुजराती उनकी मातृभाषा है। इसके अतिरिक्त हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, मराठी, बांग्ला, आदि भाषाओं के भी वे अच्छे जानकार हैं। तमिल भाषा से भी वे परिचित हैं और संस्कृत भाषा से भी उनको पर्याप्त रुचि है।"[6] केवल विविध प्रांतीय भाषाओं की जानकारी तक ही नागरजी का भाषा संबंधी ज्ञान सीमित नहीं है। जहाँ तक हिन्दी प्रदेश की भाषाओं तथा बोलियों का संबंध है, वे उनसे भी घनिष्ठता पूर्वक परिचित हैं। केवल बोलियों से ही नहीं, उन्हें अपने-अपने ढंग, अपने-अपने लहजे, अपनी स्थानीय रंगत में घुल-मिलकर बोलने वालों से भी उनका निकट का संबंध है। शिक्षितों, अशिक्षितों तथा अल्प शिक्षितों, बूढ़े, जवानों, ग्रामीणों, नागरिकों, नारी-पुरुषों की भाषा। तात्पर्य यह है कि भाषागत सूक्ष्म से सूक्ष्म ब्यौरा में वे गए हैं और उन्होंने उसे सफलतापूर्वक आत्मसात किया है। इस कथन के प्रचुर प्रमाण हमें उनके उपन्यासों में दृष्टिगोचर होते हैं, जो एक स्तर पर भाषा-विज्ञान के कोष कहे जा सकते हैं। नागरजी को प्रायः आंचलिक उपन्यासकार की संज्ञा दी जाती है, उसका एक प्रधान कारण उनकी भाषा का यह वैशिष्ट्य भी है। अतः इस अध्याय में अमृतलाल नागर के प्रमुख उपन्यासों की भाषा-शैली का यथार्थ मूल्यांकन करने की कोशिश की गई है।

क. महाकाल (१९७० में 'भूख' शीर्षक से प्रकाशित) :

नागरजी की भाषा बहुरंगी है। वह प्रेमचंद की भाषा प्रकृति से साम्य में रखती है। इस उपन्यास की भाषा सरल, रोचक एवं सौद्देश्य है। वह भावों और विचारों को प्रस्तुत करने के लिए सहायक सिद्ध हुई हैं। भाषा में जीवंतता है। यत्र-तत्र मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग हुआ है।

सूक्तियों, संस्कृत, उर्दू, अरबी-फारसी तथा अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

★ **मुहावरों का प्रयोग :**

इस उपन्यास में मुहावरों का प्रयोग भरपूर मात्रा में हुआ है। जैसे- आँखों के आगे अंधेरा छाना, चेहरे पर लाली दौड़ा आना, मौत सिर पर नाचना, आँखों में खून उतर आना, कलेजा फटना, हाथ मलते रहना, घुटने टेकना, चार चाँद लगना, एक तीर से दो शिकार करना, आँच न आने देना, शेर के शिकार में सियार की जूठन मिलना आदि।

★ **कहावतों का प्रयोग :**

उपन्यास की भाषा में कहावतों का प्रयोग भी बखूबी से हुआ है। जैसे- आबरू चली गई तो लाख का आदमी खाक का, राजा के घर मोतियों का काल न होने से तो काने मामा की भले, जान है तो जहान है, नंगे की तो दोनों टाँगे उघड़ी, बिल्ली के भागों में छींका, जिसने मुँह चीरा वही खाने को देगा, भागते भूत की लंगोटी भली, चवन्नी-भर सच में बारह आने झूठ, दाई के आगे पेट छिपाना बेफूजूल है, गेहूँ के साथ घुन भी पिसना, हिसाब कौड़ी का और बख्शीश लाख की आदि।

★ **सूक्तियों का प्रयोग :**

उपन्यास में सूक्तियों का प्रयोग हुआ है। जैसे- कुलीनों की आबरू तो चिता तक साथ जाती है।.... मायाविनी नारी आखिर है तो माया की ही मोहिनी।....यह आदर्श, धर्म, पाप-पुण्य सब पेट-भरे की लीला है, जब तक एक भी स्त्री दासी रहेगी उसके गर्भ से दास ही उत्पन्न होंगे आदि।

★ **अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग :**

उपन्यास में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी हुआ है जैसे- प्रिंसिपल, स्कॉलरशिप, कैरियर, फाउंटेनपेन, गुडलक, रिपोर्टर, हाउस, कल्चर, एवरेस्ट, रॉयल, रिजर्व, ब्यूटी, प्लेटफार्म, इंडियन आदि।

★ उर्दू, अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग :

उर्दू अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग की किया है। जैसे- वजीफा, मेज, रुमाल, कलम, तस्वीर, कागज, तकलीफ, काबिल, अंजाम, तारीख, औकात, इंसाफ, शैतान, खुदा, जमीर, खुराफात, जाम, नफरत, एहसान आदि।

★ संस्कृति वाक्यों का प्रयोग :

उपन्यास में कहीं-कहीं पर संस्कृत के वाक्यों का भी प्रयोग हुआ है जैसे-

"का ते कान्ता कस्ते पुत्रः

संसारोडयमतीव विचित्र।

कस्य त्वं वा कुत आयात:

तत्त्वं चिन्मय तदिदं भ्रात:।

में गोविन्दं, भज गोपाल, गोविन्द भज मूढमते।"[7]

ख. सेठ बाँकेमल :

इस उपन्यास को 'प्रयोगात्मक उपन्यास' कहलाने की एक भूमिका उसकी भाषा में सूचित होती है। वैसे नागरजी के उपन्यासों में समाज के विभिन्न वर्गों, तबकों की बोलियों का बड़ा सजीव रूप हमें देखने को मिलता है। इस उपन्यास में भी उन्होंने अपने पात्रों द्वारा संपूर्ण किस्से, आगरे के व्यापारियों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली बोली में सुनाये हैं। जो बहुत ही आकर्षक है। इसलिए नागरजी इस प्रयोगात्मक, उपन्यास में पूर्णतः सफल हुए हैं क्योंकि; इसमें भाषा का एक नया प्रयोग हुआ है।

★ आँचलिक भाषा का प्रयोग :

आगरा आँचल की हिंदुस्तानी भाषा का प्रयोग उपन्यास को रोचक बनाता है। "अरे दूँ हूँ।....ससुरा गल्ला खोलना भालू कर रहता है।....खुसकैट। बीस जुते मारे होंगे साले तेरे म्हों पे। साला पैसा निकालो, पैसा निकालो जैसे पैसा रख ही तो लीन्हा होगा इसका। ससुरा लाख रुपए की इज्जत उतार लेवे हैं। बस, अब तू चला जा हयां से, इसी में खैर है तेरी और जो कल से इस

सड़क पे आवाज लगाई है 'उड़ती खबर' का बच्चा बन के, तो मारते-मारते खुसकैट बना दूँगा तुझे।[8]

★ **बोली मिश्रित अंग्रेजी का प्रयोग :**

अपनी स्थानीय बोली में अंग्रेजी का मिश्रण चारित्रिक विशेषता दिखाता है। उसमें हास्य और व्यंग्य है। जैसे "लव इज युनिवरसैल एपीडैमिक एफेकचुएल इन आल क्लैमेंस एण्ड कनडेसैंस, बट देर इज आकुलेशन भिचकैन सिक्योर एगजमसन from इट्स इंफलैंस।"[9]

★ **उर्दू, अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग :**

इस उपन्यास की भाषा में उर्दू, अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग भी भरसक मात्रा में हुआ है। जैसे तबियत, दीवाल, जन्नत, रूमाल, कबूल, तमीज, तकदीर, इन्साफ, इलाज, काबिल आदि।

★ **वाक्यों में मुहावरों का प्रयोग :**

उपन्यास के वाक्यों में मुहावरों का प्रयोग स्वाभाविक हुआ है। जैसे कलेजे में बिठाना, कलेजा फटना, जान निकल जाना, जान में जान आना, मार मिटना, सोलह आने ठीक होना, हाथ पीले करना, लाख रुपए की बात सुनना आदि।

★ **कहावतों का प्रयोग :**

उपन्यास में स्थानीय कहावतों, सूक्तियों और लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है। जैसे बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद, न दिन के रहे न दुनिया के, उल्टा चोर कोतवाल को डांटे, एक तरफ कुंआ दूसरी तरफ खंदक, बंधी मुठ्ठी सवा लाख की बात सुनाना आदि।

★ **सूक्तियों का प्रयोग :**

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने सूक्तियों का भी प्रयोग किया है। जैसे-

तिरिया चरित्तर जाने नहीं कोय, खासम मार के सती होय।

स्त्री जात तो बिचारी अबला होवे है। जैसा चाहो उंगलियों पे नचा लो।

गुरु गुड ही रह गया, चेला ससुर शक्कर हुआ जाए।

बड़े बोल का सिर नीचा होवे हैं।

रहीसों की जेब में तो, हजूर सदा रिद्धि सिद्धि बिराजे है।

सिपाही और जुवारी अगर अपने बाप का सच्चा है तो चुनौती मैदान से पीठ नही दिखावेगा।

बुड्ढा तोता कैसे राम-राम पढ़ सके है ससुरा। आदि।

ग. बूँद और समुद्र :

इस उपन्यास में चित्रित एक मुहल्ले के सजीव रेखाचित्र के कारण अधिकांश समीक्षक इसे आँचलिक उपन्यास मानते हैं। विविध पात्रों की भाषा उनके परिवेश और परिस्थिति के अनुकूल है। पात्रों की अपनी खास बोली-बानी के कारण आँचालिकता में सहायता मिली है। प्रत्येक पात्र की भाषा उसके वर्ग और स्तर का परिचय देती है। जैसे : कल्याणी की भाषा, ताई की जादू-टोना और मंत्र-तंत्र की भाषा। समय, भाव और परिस्थिति के अनुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। व्यापकता की दृष्टि से भाषा अद्वितीय है। जीवन के अलग अलग स्तरों के पात्रों की भाषा का प्रयोग हुआ है। ताई की भाषा देखिए - "अरे तेरे ही अगाड़ी आवेगा-खसोटी सब को झूठा बनाती फिरै हैगी। सास मरी को दुःख भी दे और ऊपर से बदनाम भी करे। खसम निगोडे को उल्लू बनावे- अरे सर्दपूनो को कौन रंडिया-रांड ठाकुर जी की छत पे समाधानी से अपना मुँह काला करा रही थी? बोल। ठाकुर जी का भी डर-भौ नई है तुझे कुछ।"[10]

- ★ **गवई बोली का प्रयोग :**

उपन्यास में कल्याणी और महिपाल की गवई बोली का प्रयोग भी बहुत प्रभावी हुआ है जैसे- "काहे, इमा छूत हुई गई। बौडम! अरे चौका नाम के यकु कमरा मा न खावा, बइठिके बैठका नाम के दूसरे कमरे महियाँ खाय लिहा। ईमाँ काऊंन बराई आय गई, बताओ?....

तउ हम तुमको खरौ कहिति हथि, बाकी हम पंचन का विचार बिबेकु है....।

अइसी की तइसी तुम्हारे बिचार-बिबेक की। खाओ।....

द्याखौ, हम पांच घर गिरस्ती वाले बाल बच्चेदार हुई।"[11]

घ. शतरंज के मोहरे :

'शतरंज के मोहरे' उपन्यास की भाषागत विशेषता भी उपन्यास की अपने आप में एक विशेषता है। उपन्यास का परिवेश नवाबी सांस्कृतिक होने के कारण भाषा में अरबी-फारसी शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

★ **उर्दू, अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग :**

उपन्यास के मुस्लिम पात्र अरबी-फारसी मिश्रित भाषा का प्रयोग अधिक करते हैं। जैसे- खिदमतगार, तवायफ, मसरूफ, नियाज़, ख्वाहिश, फरमान, तपिश, नसीहत, मजार, फरेब, निकाह, सौहर, तलाक, तोहफा वालिद, आदाब आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

★ **मुहावरों का प्रयोग :**

उपन्यास में मुहावरों का प्रयोग हुआ है- औकात ओछी करना, खून खौल उठना, गड़े मुरदे उखाड़ना, तारीफों के पुल बाँधना, मन में चोर बैठना, चूना लगाना, नाक का बाल बनना, कान भरना, बहती गंगा में हाथ धोना, मिट्टी पलीद करना आदि।

च. बिखरे तिनके :

लक्ष्यहीन युवा पीढ़ी को ध्यान में रखकर लिखा गया उपन्यास है। उपन्यास की रचनावस्तु मेहतर समाज की है जिसमें कामचेतना का उदात्तीकरण और आत्यंतिक समय की प्रतिष्ठा है। यह उपन्यास अंशुधर शर्मा के समाजशास्त्री सर्वेक्षण को आधार बनाकर लिखा गया है। नागरजी का ' अग्निगर्भा' उपन्यास एक पारिवारिक पृष्ठिभूमि में स्त्री की नियत को परिभाषित करता है। 'करवट' उपन्यास वस्तुतः उत्तर भारत के मध्यवर्ग के उदय की कहानी है, जो उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम छह दशकों को अंकित करता है। अमृतलाल नागर का 'पीढ़ियाँ' अन्तिम उपन्यास में सन् १९०५ के स्वदेशी आंदोलन और क्रांतिकारी आतंकवाद से लेकर सन् १९८६ के विघटनकारी आतंकवाद तक का काल अंकित है। "ये कोठेवालियाँ" नागरजी की वेश्याओं के जीवन को उजागर करने वाली स्वतंत्र कृति है। यह एक इंटरव्यूपरक उपन्यास है जो आज के भारतीय समाज में वेश्या के जीवन का हिन्दी या किसी भी अन्य भाषा में, यह पहला

विश्लेषणात्मक अध्ययन है। इसमें वेश्याओं के चित्रण को अनेक रेखाचित्रों द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

इन उपन्यासों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है की सृजन की ये विविध भावभूमियाँ अगाध विस्तीर्ण विद्वता और असीम शब्दकोश की अपेक्षा रखती है। नागरजी के उपन्यासों के अध्ययन के पश्चात् इतनी सजीव विविधता प्रत्येक उपन्यास के भावलोक में हमें रसमग्न कर चकित कर देती है। कहीं भी भाषा की एकरसता उपन्यास के उद्देश्य को कष्ट नहीं पहुँचाती। समग्रतः जीवंत सार्थक भाषा का माधुर्य अपनी समूची भावात्मक प्रक्रियाओं से युक्त है। नागरजी की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है कि वह प्रत्येक स्थिति में जन समाज से संपृक्त प्रतीत होती है। नागरजी के उपन्यासों की भाषा एक ओर उनकी सांस्कृतिक अभिरुचि और श्रेष्ठ मानवतावादी जीवनदृष्टि का संवहन करती है और दूसरी ओर देशकाल-पात्र के अनुरूप सुरूचिपूर्णता, गंभीरता, स्थानिकता, हास्य व्यंग विनोद ही में, लखनवी नजाकत और नफासत से युक्त होकर नागरजी के औपन्यासिक कौशल में चार चाँद लगा देती है।

नागरजी के कथा वर्णन की भाषा सरल तथा स्वाभाविक बोलचाल की है। इसमें भरसक प्रवाहपूर्णता, उक्ति वैचित्र्य, रोचकता और वातावरण व्यंजकता का समावेश हुआ है। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' उपन्यास का यह उदाहरण रोचकता से परिपूर्ण है- "तीसरे दर्जे में भीड़ थी तो अवश्य पर उतरती नहीं थी जितना की धुँआ भरा था। सरदी की ठिठुरन भरी हवा से बचने के लिए यात्रियों ने खिड़कियों पर चूँकि शीशे रखे थे इसलिए बीड़ियों, चलमों और पैसों की दस वाली तोता छाप सिगरेटों के दमघोंटू कड़वे धुँएके बगूले उठ उठकर कंपार्टमेंट के भीतर इस तरह से भर चुके थे मानों किसी का भूत झाड़ने के लिए कोठरी में मिचौना धुँआ भरा गया है।"[12]

नागरजी के उपन्यासों में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग देखने को मिलता है। उनके ग्रामीण पात्रों की बोली में जनभाषा के शब्दों का प्राचुर्य है और नगरीय पात्रों की भाषा में नगर की भाषा के शब्दों का। मुसलमान पात्रों की भाषा में उर्दू-फारसी शब्दों का बाहुल्य है। सोमाहुति भार्गव जैसे आचार्यों और विद्वानों की भाषा संस्कृतनिष्ठ और परिष्कृत है। ग्रामीण पात्र गँवई गाँव की बोली बोलते हैं। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' की सबसे बड़ी विशेषता उसकी भाषा है। लोकजीवन से इसे सीधे उठाकर इस पर पच्चीकारी की गई है जिससे पूरा परिवेश अपनी मौलिकता में चमकाने लगता है। अकादमीय भाषा के खतरे से अपने को बचाकर पात्र के योग्य भाषा को नचाते रहने में नागरजी को कमाल हासिल है। समाज के हर वर्ग की अपनी भाषा दृष्टि होती है।

तेवर का एक खास अंदाज होता है- और चूँकि उसकी नब्ज़ नागरजी के हाथ में है, इसलिए पात्र रचे हुए नहीं लगते, अपने मुहल्ले के खाते-खेलते, जीते-जागते लगाते हैं। मेहतर टोली और छावनी बाजार में घुसते ही अत्यंत समर्थ जीवंत प्रवाहपूर्ण भाषा सहज लय में पात्रों को पिरोने लगती है। उदाहरण के लिए 'नाच्यौ बहुत गोपाल' के पात्र मास्टर जैक्सन की अपनी अलग भाषा है जिसमें अंग्रेजी शब्दों का बाहुल्य है- "वो ! डैड इज ए वेरी स्माल मैटर माई डियर ब्वाय! नाइन्टीन ट्वेन्टी सिक्स का ईयर खत्म होने से पेले तुम लार्ड जीजस का गिरोह में आ जाओ।"[13]

१.४ नागरजी के बालकथा साहित्य का भाषा-शिल्प

अमृतलाल नागर १९३९ से १९८९ तक बच्चों का साहित्य-कथासाहित्य भी समय-समय पर लिखते रहे हैं। फिल्मी दुनिया से वापसी के बाद लगभग १० वर्षों तक जिस दौर में वह नाटक रंगमंच और आकाशवाणी के साथ जुड़े रहे, उसी दौर में उन्होंने बच्चों के साथ भी बहुत सन्नधता बनाए रखी थी। इसलिए उन्होंने बाल कथासाहित्य में बच्चों के लिए सहज और सुपरिचित भाषा और शिल्प हो, इसका ध्यान रखा है। 'बालमहाभारत', 'इतिहास के झरोखे' में विषय-वस्तु अलग तरह की है। इसलिए उनकी इन बालकथात्मक रचनाओं की भाषा-शैली मूलकथा के ज्यादा नजदीक हैं और बच्चों के लिए ग्राह्य भी। अपने निधन से एकाध महीने पूर्व का उनका अन्तिम लेखन चार बाल कहानियाँ हैं, जिनमें से एकाध शिशु कहानियाँ हैं। इनका भाषा-शिल्प भी बच्चों के वय के अनुरूप हैं।

१.५ गंगाप्रसाद मिश्र के कथा-साहित्य में भाषा-शिल्प

श्री गंगाप्रसाद मिश्र प्रेमचन्द की प्रगतिशील लेखक परंपरा के कथानुगामी हैं। उन्होंने ८-९ साल की उम्र से ही प्रेमचन्द का पूरा साहित्य क्रमशः पढ़ा ही नहीं बल्कि; उसे आत्मसात भी करते रहे। इसलिए गंगाप्रसाद मिश्र की भाषा-शिल्प में प्रेमचंद की कहानियों का और 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' उपन्यासों का भाषा-शिल्प सहज ही उनके प्रारंभिक लेखन में भी आता रहा है। इसके लिए गंगाप्रसाद मिश्र को बहुत लोगों ने व्यंग्यात्मक लहजे में कहा भी 'वही प्रेमचन्द टाइप' लिखते है। गंगाप्रसाद मिश्र ने ऐसे कथन को अपना प्रमाण पत्र माना। मिश्रजी की लगभग प्रारंभिक १५ वर्षों की कहानियों और 'विराग', 'संघर्षों के बीच' तथा 'महिमा' में प्रेमचन्द की भाषा-शिल्प का गहरा प्रभाव तो मिलता है, लेकिन उनकी कहानियों और उपन्यासों का कथा-परिक्षेत्र प्रेमचन्द के कथा-परिक्षेत्र से अलग और नगरीय, विशेष रुप से लखनऊ का

होने से मिश्रजी की कथा-साहित्य का भाषा-शिल्प अलग भी रहा है और प्रेमचन्द से स्वायत्त भाषा-शिल्प के साथ विकसित भी हुआ है। १९५५ के बाद गंगाप्रसाद मिश्र लगभग २० वर्षों तक लखनऊ से बाहर रहते हुए जो कहानियाँ और दो उपन्यास 'तस्वीरें और साये' तथा 'सोनारवाणी के पार' लिखे हैं उनका भाषा-शिल्प भी गंगाप्रसाद मिश्र के उनके प्रारंभिक २० वर्षों के कथा-लेखन से भिन्न है।

चूँकि गंगाप्रसाद मिश्र, नागरजी की तरह बचपन (९-१० वर्ष) से ही जिस लखनऊ में रहे हैं। वह नागरजी के 'चौक' क्षेत्रीय लखनऊ से अपने परिवेश में भिन्न है। नागरजी की अपेक्षा गंगाप्रसाद मिश्र की कहानियाँ 'नागरेतर-लखनऊ' के केंद्रित अधिक है। अतः चाहे गंगाप्रसाद मिश्र के उपन्यासों का परिवेश हो और चाहे इस परिवेश के चरित्र, पात्र और वातावरण! मिश्रजी के कथा-लेखन में वह बहुत यथार्थ-रूप में और जीवन्त हो करके आता है। 'सोनारवाणी के पार' प्रगतिशील उपन्यास होने के बावजूद उसकी भाषा में उपन्यास के परिवेश के नाते अनेक स्थलों पर छायावादी भाषा उभरकर आयी है। 'जहर चाँद का' उपन्यास मूलतः ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यालयों से जुड़ी शिक्षा से संबंधित है। अतः उसका भाषा-शिल्प मिश्रजी के अन्य उपन्यासों से अलग है। यद्यपि उसमें कथा-नायक कौशल मूलतः लखनऊ का है किन्तु; बाद में वह जिस विद्यालय में अध्यापक नियुक्त होता है, वह लखनऊ के नगर-क्षेत्र से अलग ग्रामीण-क्षेत्र है। अतः इस उपन्यास का भाषा-शिल्प गंगाप्रसाद मिश्र के पूर्ववर्ती उपन्यासों से अलग स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

'मुस्कान है कहाँ' उपन्यास गंगाप्रसाद मिश्र ने मध्यवर्गीय विभिन्न स्तर के परिवारों के बच्चों को लेकर लिखा है। यह बाल साहित्य से अलग हिन्दी उपन्यास की मुख्यधारा में, चूँकि विशिष्ट कोटि का उपन्यास है और इसमें समाज के विभिन्न वर्गों के पात्र हैं, इसलिए पूरे उपन्यास का भाषा-शिल्प लखनऊ की नगरीय-आंचलिकता के उस कालखण्ड का स्पष्ट बोध कराता है, जो आपातकाल के बाद विकसित होने वाला नया लखनऊ है। इसी तरह हम यदि गंगाप्रसाद मिश्र के १९५५ के बाद लखनऊ से बाहर रहने की अवधि की कहानियों के भाषा-शिल्प को देखें तो वह भी मिश्रजी की पूर्व कहानियों से भिन्नता लिए दिखाई पड़ती है।

गंगाप्रसाद मिस्र का अंतिम उपन्यास उनके कथ्य और भाषा-शिल्प दोनों का चरमोत्कर्ष है। मूलतः यह उपन्यास लखनऊ के एक दंपत्ति की तीन बेटियों को खेल-जीवन में आगे बढ़ाने

से संबंधित है। इस उपन्यास के मूल में गंगाप्रसाद मिश्र की कहानी 'परिभाषाओं की कगार' रही है, जिसे किंचित विस्तार देकर उन्होंने उपन्यास के रूप में लिखना शुरू किया किन्तु; पार्किंसन और लकवा जैसी बीमारियों से ग्रस्त हो जाने के कारण इसे वह आगे नहीं बढ़ा पा रहे थे। परन्तु उन्हें प्रेमचन्द का यह वाक्य- 'तुममें प्रतिभा है गंगाप्रसाद, तुम हमेशा लिखते रहना, लिखना कभी मत छोड़ना।' यह हमेशा याद रहा। अतः एक समय के बाद 'रांग साइड' नामक अपना यह उपन्यास उन्होंने क्रमशः दो अनुच्छेदों में अपनी बहुत सारी सीमाओं के कारण संक्षेपण की रचना प्रक्रिया अपनाते हुए बोलकर लिखवाया। इससे यह उपन्यास उनका 'तस्वीरें और साये' जैसा बड़ा और महत्वपूर्ण उपन्यास नहीं बन सका किन्तु; लगभग ७९ पृष्ठों में सीमित रहने के बावजूद हिन्दी के खेल-जीवन से संबन्धित लिखे गए उपन्यासों में यह छोटा होते हुए भी अत्यन्त महत्त्व का उपन्यास है। इसमें कथानक के अनुरूप उनकी भाषा-शैली ही नहीं भाषा-शिल्प भी बहुत निकला हुआ है तो निश्चित ही इसलिए कि बोलकर लिखवाने के बावजूद वे इसे अपनी अन्तिम रचना होने के नाते एक उत्कृष्ट कथा-रचना के रूप में छोड़ जाना चाहते थे।

१.६ गंगाप्रसाद मिश्र के उपन्यासों में भाषा-शिल्प

लखनऊ की रंगीनियों, ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं किन्तु पास में लगी हुई झोपड़ियाँ, निम्न मध्यवर्गीय परिवार की मजबूरियाँ, उनकी तड़पन, उनकी जलन, समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, अंधविश्वास, सामाजिक कुरीतियाँ, रूढ़ियाँ, टूटते हुए परिवार, युवा आक्रोश आदि को मिश्रजी ने अपने भाषा-शिल्प के माध्यम से अपने कथा साहित्य में जीवंत किया है। जिसमें मिश्रजी के कुछ प्रमुख उपन्यासों की भाषा-शिल्प इस प्रकार है-

क. विराग :

उपन्यास की भाषा मिली-जुली वातावरण को प्रस्तुत करने में पूर्णतः सक्षम है। भाषा में कसावट है। उपन्यास में बिम्ब निर्माण से काम लिया गया है। भाषा सरल, स्पष्ट और प्रवाहमयी है। विराग और अचल की भाषा में गंभीरता और विद्रोह ध्वनित होता है। मिश्रजी ने भाषा में गीत, कथा, मुहावरे, कहावतों, सूक्तियों का प्रयोग कर प्रभावी बनाया है।

- **अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग :**

लेखक ने उपन्यास की भाषा में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया है। हसबैंड, अंकल, ब्रेड,

कप, रिपोर्ट, यूनियन, इण्डिया, वाइफ, फेमस, फर्म, हिस्ट्री, कम्यूनिष्ट, सोशलिष्ट, क्वार्टर, ट्रायल, लव, कमीशन, आर्डर, रेलवे, रेडियो कमांडर, एनीथिंग आदि।

★ उर्दू, अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग :

यह उपन्यास तत्कालीन लखनऊ के दो छोरों की दो मिलों से जुड़े तथ्य और वहाँ के लोगों के जीवन से जुड़ा हुआ है। लखनऊ पर केंद्रित होने के कारण इसमें उर्दू, अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग भरसक मात्रा में हुआ है। जैसे- तबीयत, तकलीफ़, तारीफ़, तकदीर, तस्वीर, तमीज, तपन, तोहमत, तसरीफ, तजुरबा, ताज्जुब, सिफारिश, दीवाल, दफन, जन्नत, अखबार, नजराना, कबूल, इन्साफ, हकीकत, इंतजाम, इलाज, काबिल, रूमाल, सराफत, इख्तयार, निजकत आदि।

★ मुहावरों का प्रयोग :

इस उपन्यास की भाषा में मुहावरों का प्रयोग लेखक ने किया है। जैसे- मुँह पर चूना पोतना, चेहरा खिल उठना, प्राण निछावर करना, नाक कट जाना, पानी उतार जाना, आपा खो देना, जले पर नमक छिड़कना, छाती पर मूँग दलना, अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारना, मुँह काला करना, साँप सूँघ जाना आदि।

★ कहावतों का प्रयोग :

गंगाप्रसाद मिश्र ने उपन्यास की भाषा में कहावतों और सूक्तियों का प्रयोग किया है। जैसे- खाने के दाँत अलग और दिखाने के अलग, साख जाते ही लाख भी चले जाते हैं - लाख लौट भी आए पर साख नहीं लौटती, दंपत्ती का वियोग ही वेश्या का इष्ट है। रूप और जवानी किसी की नहीं टिकी। वेश्या के गुणों का विकास वेदांत पढ़कर नही हुआ करता। पत्थर की मूर्ति को प्रार्थना के फूलों का मोह क्या। विधि का विधान बड़ा निर्मम होता है। कोयला जब जीवन की ऊष्मा पा जाता है तो हीरा बन जाता है आदि।

ख. संघर्षों के बीच :

मिश्रजी का यह उपन्यास प्रगतिशील-यथार्थवादी है। इन्होंने अपने परिचित जीवन की पृष्ठिभूमि से अपने कथानक और पात्रों को उठाकर यथार्थवादी उपन्यास की सबसे बड़ी आवश्यकता पूरी की है। जिस प्रकार कथावस्तु के चयन में, उसी प्रकार चरित्र-चित्रण, भाषा-

शिल्प और कथोपकथन में भी लेखक ने यथार्थवादी प्रणाली का ही अनुसरण किया है। जहाँ तक संभव हुआ है, लेखक अपने निजी अनुभव की सीमा से बाहर नहीं गया है। यही कारण है कि जीवन के प्रति उसकी सच्चाई में कहीं भी फर्क नहीं आया है। लेनिन ने एक स्थल पर यथार्थवादी उपन्यासों को अपने अनुभव से बाहर उड़ने का निषेध किया है।

अपनी कला में जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण में मिश्रजी प्रेमचंद से प्रभावित हैं। इस प्रभाव ने उनकी मौलिकता या स्वतंत्र प्रतिभा का दमन नहीं प्रस्फुटन किया है। उन्हें प्रेमचंद स्कूल का उपन्यासकार कहना ठीक होगा।

प्रेमचंद अपने निजी संपर्क और अपनी कला से जिन कहानिकारों और उपन्यासकारों को जन्म दिया है, उनकी संख्या बहुत है और उनमें मिश्रजी का एक विशिष्ट स्थान है। **प्रेमचंद का प्रभाव मिश्रजी की चलती मुहावरेदार सादी भाषा में, शिल्प में, चरित्र-चित्रण और कहानी कहने के ढंग में भी उसी प्रकार स्वस्थ रक्त की तरह प्रवाहमान है,** जिस प्रकार जीवन के प्रति उनके यथार्थवादी और आशावादी दृष्टिकोण में।

उपन्यास की भाषा एक ओर यथार्थवादी सोच और श्रेष्ठ मानवतावादी जीवन दृष्टि का संवहन कराती है तो दूसरी और देशकाल-पात्र के अनुरूपता, गंभीरता, स्थानीयता, व्यंग्यात्मकता आदि विशेषताओं से युक्त है। अंग्रेजी, उर्दू, अरबी-फारसी आदि शब्दों का प्रयोग भाषा में हुआ है साथ ही मुहावरों, कहावतों और सूक्तियों का प्रयोग भी भाषा में हुआ है।

★ **मुहावरों का प्रयोग :**

संघर्षों के बीच उपन्यास में गंगाप्रसाद मिश्र ने पोरचुर मात्रा में मुहावरों का प्रयोग किया है। जैसे- आप से बाहर होना, आँखों में आँखें डालना, टस से मस न होना, पैर पर कुल्हाड़ी मारना, ओखली में सिर डालना, न रहे बाँस न बजे बाँसुरी,आग उगलना, खून खौल उठना, मुँह काला करना, आँखों के आगे अँधेरा छाना, पैरों में पंख लगना, घुटने टेकना, बेड़ा पार लगाना आदि।

★ **कहावतों और सूक्तियों का प्रयोग :**

उपन्यास में कहावतों और सूक्तियों का प्रयोग भाषा को प्रभावपूर्ण बनाता हुआ दिखाई देता है। जैसे- अंधे के आगे रोए और अपने नैन खोए, पानी तो पानी में ही मिलेगा, आम खाने है या पेड़ गिनने हैं, चिराग तले अंधेरा, कानून चाक पर चढ़ी मिट्टी है, पैसे वाला उसे जैसा रूप देना

चाहेगा देगा, स्वास्थ्य के लिए बेटा बाप को भी त्याग सकता है, चंद्रमा का सौंदर्य तनिक भी कम नहीं होता आदि।

★ **अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग :**

मिश्रजी ने उपन्यास की भाषा में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे- लेनिन, काम्यूनिष्ट, फोटोग्राफ, क्लासिकल, फैशन, शूट आदि।

★ **उर्दू, अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग :**

इस उपन्यास में उपन्यासकार गंगाप्रसाद मिश्र ने बहुत से उर्दू, अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे- तलाक, फरोस, जनाब, कागज, किताब, फिजूल, तस्वीर, इल्जाम, अखबार, शख्स, खुशामद, बुखार, नजरे-इनायत, नुमाइश, जिस्मानी, रूहानी, तशरीफ, तमीज, जन्नत, अदब आदि।

ग. तस्वीरें और साये :

'तस्वीरें और साये' गंगाप्रसाद मिश्र एक महत्वपूर्ण औपन्यासिक कृति है, जो प्रेमचंद-युग से लेकर आज तक अपने औपन्यादिक शिल्प एवं जीवन की कलात्मक व्याख्या के प्रति सतत् जागरूक रहा है। इसके साथ ही उपन्यास, रेडियो-रूपक, शब्द-चित्र इत्यादि अनेक विधाओं में भी समय-समय पर लिखते आये हैं। मध्यवर्गीय समाज के एक संस्कारी व्यक्ति के नाते जिस संघर्ष को उन्होंने स्वयं झेला है या सामाजिक विषमता की जिस विभीषिका को निकट से देखा-परखा है, उन्होंने उसे अनेक कहानियों और उपन्यासों में साकार भी किया है।

मिश्रजी की भाषा-शैली स्वतंत्र विवेचन का विषय है। यहाँ उसकी अत्यंत संक्षिप्त चर्चा ही पर्याप्त होगी। उनकी भाषा सहज, स्वाभाविक आडंबरहीन तथा बोलचाल की भाषा है। उपन्यास में लखनऊ का परिवेश होने के कारण उन्होंने वहाँ के बोलचाल के लहजे को यथावश्यक स्थान दिया है। उनकी पत्रानुरूप भाषा पर कुछ आलोचक प्रेमचंदी प्रभाव को मानते हैं किन्तु; भाव-प्रकाशन और वर्णन की शैली मिश्रजी की अपनी है। उनका जैसे शिष्ट और मृदु स्वभाव है, शैली का ठीक वैसा ही वियोजन हुआ है। मिश्रजी शिष्ट परिहास के माध्यम से व्यंग्य भी प्रस्तुत करते हैं किन्तु यह **व्यंग्य थोथी चोट करने वाला न होकर गहराई तक अन्तर्जगत में प्रवेश करने वाला है।** बलदेव के शब्द चित्र में उनकी यह प्रसन्न शैली अत्यंत ही रमणीय बन

पायी है--

"लाला बलदेव प्रसाद मुहल्ले की ऐसी ही हस्तियों में से थे। उनकी दो विशेषताएँ थीं। चर्च मिशन स्कूल में पाँच सीढ़ी वह पर न कर पाए थे, परन्तु पढ़े हुए वह इतना थे कि बड़े-बड़े वकीलों को दाँव से जाते थे। दूसरे उनके जीवन का सिद्धांत था बिना मेहनत किए हुए खाना। वह सही माने में बुद्धिजीवी थे, परिश्रम दूसरे करते, लाभ यह उठाते, फसल दूसरा बीता, काटते बलदेव प्रसाद।"[14]

मिश्रजी के भाषा-शिल्प का यह सुंदर भजन देखिए--

"जागिए रघुनाथ कुँवर पंछी बन बोले।

अथवा

उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है।"[15]

उपन्यास की पात्र नन्हीं आभा ने अंग्रेजी की कविता '**होम दी ब्राट हर वारियर डेड**' बड़े निर्भीक होकर सुनाई। गुड़िया-सा उसका मुँह ऐसी तेजी से और इतना स्पष्ट धवनी करत। उस पर भाव आते-जाते।

उपन्यास में वर्णित कार्यक्रम के अंर्तगत संगीत का अंतिम कार्यक्रम छायानट का ख्याल था जिसकी भाषा बहुत ही मधुर थी, जिसे इंटरमीडिएट की एक छात्रा कुमारी माधवी शिवानी ने गाया--

"कारे, जाने न दूँगी, एरी माई अपने बालम को,

नैनन में कर राखूँ पलकन मूँद-मूँद कारे....

चमक बिजुरी मेहा बरसे, सदा रँगीले मोहम्मदशाह,

बरसे बदरा झूम-झूम।। काले...."[16]

घ. सोनारवाणी के पार :

मिश्रजी का पाँचवा उपन्यास है, जो १९६८ ई. में प्रकाशित हुआ था। काव्य तथा नाटकों में कभी-कभी रचनाकार कथावस्तु, पात्र, भाषा-शिल्प अथवा उद्देश्य का संकेत किसी छंद अथवा श्लोक में श्लेष माध्यम से करते पाए गए हैं। मिश्रजी ने प्रस्तुत उपन्यास में परिस्थिति से अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। जिसमें बुद्धजीवियों की साहित्यिक भाषा, पुजारियों की पुरोहिती भाषा, अंग्रेजी मिश्रित भाषा आदि विभिन्न प्रकार की भाषाओं का प्रयोग बड़ी कुशलता के साथ किया है।

★ **अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग :**

उपन्यास में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया गया है। जैसे- ट्यूटर, ट्यूशन, सीरियस, ब्रदर, लाइटर, प्रपोजल, टेंशन, इमोशनल, टिफिन, एडवांस, लैंप, स्टेंडर्स, लव, कैरियर आदि।

★ **अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग :**

इस उपन्यास में उपन्यासकार गंगाप्रसाद मिश्र ने बहुत से अरबी-फारसी शब्दों प्रयोग किया है। जैसे- किताब, कापियाँ, अखबार, जनाब, बुखार, खुशामद, जिस्मानी, तमीज, फारोस, नजरे, इनायत, तशरीफ तरकीब, फर्ज, खबर, खत, नसीहत, लिहाफ, बगैरत आदि।

१.७ गंगाप्रसाद मिश्र के बालसाहित्य का भाषा-शिल्प

प्रेमचन्द ने भी बाल-साहित्य लिखा है, जैसे यह बात कम ही लोग जानते हैं, वैसे ही गंगाप्रसाद मिश्र के बाल-साहित्य लेखन के बारे में भी 'न' जैसा ही जानते हैं। गंगाप्रसाद मिश्र का बाल-साहित्य लेखन आजादी-पूर्व ५वें दशक में शुरू हुआ है। तब मिश्रजी हरदोई के गवर्नमेंट स्कूल में थे। वहाँ नागरी प्रचारिणी सभा काशी, के श्री रामनारायण मिश्र किसी के यहाँ आये तो गंगाप्रसाद मिश्र के लेखन से बहुत प्रभावित हुए। राजकीय विद्यालय का अध्यापक होने से रामनारायण मिश्रजी ने गंगाप्रसाद मिश्रजी से कहा कि वह बच्चों के लिए कुछ कहानियाँ लिखकर दें तो वह नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से छपवा देंगे। उत्साहित होकर गंगाप्रसाद मिश्र ने तत्परता से ८ बालकहानियाँ लिखी जिसे रामनारायण मिश्र ने शीघ्र ही नागरी प्रचारिणी सभा,

काशी से 'बिगुल' नाम से १९४४ में प्रकाशित कर दिया!

'बिगुल' को प्रकाशित करना जैसा प्रस्ताव कदाचित् गंगाप्रसाद मिश्र को फिर किसी ने नहीं दिया, जिससे फिर उन्होंने बच्चों के लिये भले नहीं लिखा, पर अपनी 'कहानियों-उपन्यासों' में बच्चों के चरित्रों के आने पर बालसुलभ भाषा और चरित्र-चित्रण सहज ही आ जाता रहा है। परन्तु सेवानिवृत्ति के बाद उन्होंने 'चाँद भला सब तारों से' बालउपन्यास तथा गुरुगोविन्द सिंह जीवनीपरक उपन्यास भी लिखा। उनका प्रयोगशील उपन्यास 'मुस्कान है कहाँ' बच्चों के लिए भले न हो, पर बचपन के कितने सारे चरित्रों को समेटे हुए अपनी तरह का यह विशिष्ट-उपन्यास गंगाप्रसाद मिश्र के कतिपय बालसाहित्य कृतियों के क्रम में बच्चों के अनुरूप भाषा-शैली और शिल्प की अनेक छबियाँ समेटे हुए पूर्वोक्त अन्य तीनों कृतियाँ तो बालसाहित्य का अंग होने से बच्चों की पठनीयता के अनुरूप भाषा-शैली व शिल्प को अपने में समेटे हुए हैं।

१.८ नागरजी और गंगाप्रसाद मिश्र का भाषा-शिल्प

गंगाप्रसाद मिश्र के साहित्य में जो लखनऊ प्रतिबिंबित और प्रक्षेपित हुआ है, उसका क्षेत्र और भाषा-बोली, अमृतलाल नागर की भाषा-शैली और शिल्प से बहुत भिन्न है। इस भिन्नता को समझने के लिए यह जान लेना बहुत आवश्यक है कि लखनऊ को प्रक्षेपित करने के लिए पर्याप्त समझे जाते अमृतलाल नागर जिस लखनऊ को अपने कथा-साहित्य में लाते हैं। वस्तुतः उसे जान-समझ भी लिया जाये। लखनऊ से सीतापुर जाने वाली रेलवे लाइन के पश्चिम का नवाबी दौर वाला पुराना लखनऊ ही नागरजी के साहित्य का लखनऊ है। भले ही वह आजादी के पहले से और अब तक बदलता रहा है, पर उस बदलाव का आंशिक चित्रण ही नागरजी के यहाँ मिलता है, जिसके लिए 'नाच्यों बहुत गोपाल', 'बिखरे तिनके' और 'अग्निगर्भा' और आंशिक रूप से 'पीढ़ियाँ' (१९९०) को ही हम उल्लेख्य मान सकते हैं।

इसके विपरीत गंगाप्रसाद मिश्र की कथा-लेखन का परिक्षेत्र सीतापुर जाने वाली रेलवे-लाइन के पश्चिम का वह लखनऊ है, जिसकी आबोहवा, बोली-बानी, वातावरण और परिवेश नागरजी के लखनऊ से न केवल भिन्न है बल्कि; १८५७ के बाद क्रमशः आबाद होने वाला क्षेत्र का 'नया लखनऊ' है। यहाँ 'नया लखनऊ' पद को १८५७ के बाद की बसावट और विकास क्रम दोनों रूपों में ही देखा जाना चाहिए। यद्यपि यह लखनऊ १९७० के बाद देश के अन्य नगरों के महानगर बनने और बदलने की दृष्टि से १९८० के बाद बढ़ता और विकसित होता गया-एक और

नए लखनऊ को अपने भीतर से उभरता है। पहले चर्चा की जा चुकी है कि गंगाप्रसाद मिश्र की पचासों कहानियों में और 'विराग', 'संघर्षों के बीच' तथा 'महिमा' में जो लखनऊ है, वह नागरजी के यहाँ नहीं मिलेगा। इसी तरह गंगाप्रसाद मिश्र के 'तस्वीरें और साये', 'जहर चाँद का', 'मुस्कान है कहाँ' तथा "रांग साइड' में जो लखनऊ है, वह भी अमृतलाल नागर के कथा-लेखन में इसलिए नहीं मिलेगा कि यह नागरजी के अनुभवों की विषयवस्तु लगभग नहीं ही रहा है। गंगाप्रसाद मिश्र के परिक्षेत्र के लखनऊ को अमृतलाल नागर जब भी अपने साहित्य में आने की कोशिश करते हैं तो अपने कथ्य को बहुत आंशिक और प्रासंगिक रूप तक सीमित रखते हुए, फिर वे अपने 'चौक' क्षेत्र के लखनऊ में लौट जाते हैं।

गंगाप्रसाद मिश्र की विशेषता यह है कि वह अपने कथा-साहित्य में लखनऊ से सीतापुर जाने वाली रेलवे-लाइन के जिस पूर्वी-परिक्षेत्र के लखनऊ को उन्होंने बचपन से जिया है। उसकी बोली-बानी, वातावरण, चरित्र आदि उनके अनुभव संसार में समाहित होते रहें हैं। उन्हें ही वह अपने कथा-साहित्य में प्रतिबिंबित करते रहे हैं। 'तस्वीरें और साये' (१९६४) और 'सोनारवाणी के पार' (१९६८) उपन्यासों को उन्होंने लखनऊ से बाहर रहते हुए लिखा है, पर इन दोनों उपन्यासों में लखनऊ से बाहर रहते हुए भी गंगाप्रसाद मिश्र अपने अनुभव संसार के नाते प्रामाणिकता से प्रस्तुत करते हैं। 'जहर चाँद का' (१९७६) मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्र के हाईस्कूल, इंटर कॉलेजों की शिक्षा-व्यवस्था और वहाँ के ग्रामीण यथार्थ से संबन्धित है इसलिए इसमें लखनऊ आंशिक रूप से ही आया है, पर गंगाप्रसाद मिश्र के उपन्यास 'मुस्कान है कहाँ' (१९८२) और 'रांग साइड' (१९९१) में हम १९८० के बाद के लखनऊ को पाते हैं। तत्कालीन, पात्रों की भाषा, बोली-बानी, मुहावरे तथा उनका चरित्रांकन आदि सब, स्वयं मिश्रजी के पूर्ववर्ती उपन्यासों से सर्वथा अलग है।

१.९ नागरजी और गंगाप्रसाद मिश्र के कथा-लेखन में नगरीय-आंचलिकता

अमृतलाल नागर महत्वपूर्ण लेखक के रूप में और नगरीय आंचलिकता के अत्यंत महत्वपूर्ण उपन्यासकार के रूप में भी सबसे पहले 'बूँद और समुद्र' (१९५६) के माध्यम से सामने आये। फिर तो उनका अधिकांश लेखन विशेष रुप से उपन्यासों का 'चौक' केंद्रित लखनऊ अथवा उससे 'इतर' लखनऊ के कुछ हिस्सों को अपने कथा-साहित्य में समेटता रहा है। फलस्वरुप अमृतलाल नागर और लखनऊ एक-दूसरे की पर्याय हो गए ।

श्री गंगाप्रसाद मिश्र के 'विराग' (१९४१) और 'संघर्षों के बीच' (१९४४) में आजादी के पहले का नगरीय-जीवन है। 'महिमा' (१९४५) में लखनऊ के अलावा दिल्ली और उत्तर प्रदेश के एक-दो और नगर हैं। पर 'महिमा' उपन्यास मुख्यत: लखनऊ को ही केंद्र में रखता है। सन् १९३४ से १९५५ तक गंगाप्रसाद मिश्र के कहानियों और उपन्यासों में जिस तरह लखनऊ का जन-जीवन उभरकर आता रहा है, मिश्रजी; नागरजी की अपेक्षा लखनऊ की नगरीय-आंचलिकता को कहीं अधिक सशक्त ढंग से प्रस्तुत करते रहे हैं। परन्तु 'बूँद और समुद्र' विषद उपन्यास होने के साथ ही 'चौक' और उसके जन-जीवन को जिस गहराई से पहली बार उभारकर ले आया, उसने गंगाप्रसाद मिश्र के बजाय नगरीय-आंचलिकता के अग्रणी उपन्यासकार के रूप में नागरजी को बड़ी जगह इसलिए दे दी क्योंकि; इससे पहले रेणु ने अपने 'मैला आँचल' को इस अंदाज में पहली बार ग्रामीण-आंचलिकता का उपन्यास कहकर रेखांकित कर दिया था। नागरजी ने भी उसी क्रम में 'बूँद और समुद्र' के बारे में लिखा है- "मैंने लखनऊ और उसमें भी खासतौर पर चौक को ही उठाया है। यह इसलिए किया कि नागरिक-सभ्यता की परंपरा देखने में; बोली-बानी का रंग घोलने में मुझे सबसे अधिक सुभीता यही हो सकता था।"[17] परन्तु इसी क्रम में नागरजी ने यह भी लिखा है- "कि जिन गलियों में मेरे उपन्यास की घटनाएँ घटी हैं, वे गलियाँ हू-ब-हू लगने पर भी लखनऊ के वास्तविक 'चौक' में आपको ढूँढे नहीं मिलेगी।"[18]

उपर्युक्त दोनों वक्तव्य विरोधाभासी हैं परन्तु 'चौक' के परिवेश, बोली-बानी और उस इलाके के विविध चरित्रों के बहुविधि अंदाज आदि जिस जीवन्तता से आये हैं, उसके कारण नागरजी के वक्तव्य का उपर्युक्त दूसरा अंश बहुत महत्वपूर्ण नहीं रह जाता। गंगाप्रसाद मिश्र का 'तस्वीरें और साये' (१९६४) उपन्यास इस दृष्टि से नागरजी के 'बूँद और समुद्र' के 'चौक' से इतर व्यापक लखनऊ के जन-जीवन और निम्न तथा मध्यवर्गीय परिवारों के बहुविधि चरित्रों को जैसे प्राणवंत लेखन रूप से प्रस्तुत किया है, उसके विषय में गंगाप्रसाद मिश्र ने उपन्यास की भूमिका में लिखा है- "उपन्यास का क्षेत्र लखनऊ है, वहाँ के जीवन, रहन-सहन, बोली इत्यादि के चित्र आपको इसमें मिलेंगे। जहाँ तक पात्रों का संबंध है, उपन्यास से संबंधित सभी पात्र कल्पित हैं। लखनऊ के कुछ जीते-जागते व्यक्तियों का भी इसमें जिक्र है। साहित्य, संगीत अथवा खेलकूद के क्षेत्र में उनके बिना चित्र निश्चय ही अधूरा रहता। जहाँ तक विश्वविद्यालय के जीवन अथवा घटनाओं का संबंध है, कथा का क्षेत्र लखनऊ होने के कारण लेखक उन्हें स्थानीय विश्वविद्यालय से संबद्ध

करने को विवश हुआ है।

"इस उपन्यास की पृष्ठभूमि में लखनऊ है। लखनऊ की आबो-हवा, रहन-सहन, बोलचाल, गोमती किनारे के दुख-दर्द तथा हँसी-खुशी पर लिखा गया यह उपन्यास आंचलिक उपन्यासों की श्रेणी में किस हद तक अपना स्थान बनाता है, यह पाठक और आलोचक जाने।"[19] गंगाप्रसाद मिश्र का यह उपन्यास उनके पिछले उपन्यास 'महिमा' के लगभग १९ वर्ष बाद आया और १९५५ के बाद गंगाप्रसाद मिश्र लगभग २० वर्षों तक लखनऊ से बाहर रहे हैं। यही नहीं १९५० से लगभग १९६० तक उनका मन भी 'पथ के काँटे' उपन्यास की पाण्डुलिपि १९४७-४८ में खो जाने से उपन्यास लेखन से उचट गया था। १९५५ से गंगाप्रसाद मिश्र सेवानिवृत्त पर्यंत लखनऊ से बाहर ही रहे हैं। ऐसे में 'तस्वीरें और साये' के लगभग ३१५ पृष्ठों में नगरीय आंचलिकता के साथ 'चौक' से इतर लखनऊ का व्यापक-क्षेत्र अपनी विविधताओं और संपूर्णताओं में जिस व्यापकता से उभरकर आया है, वह लखनऊ से बाहर रहकर लखनऊ को उपन्यास के स्तर पर उनके जाने के नाते हिंदी उपन्यास साहित्य को गंगाप्रसाद मिश्र का अभूतपूर्व प्रदेय है। यहीं यह भी उल्लेखनीय है कि प्रेमचंद की परंपरा के अत्यन्त समर्थ संवाहक के नाते गंगाप्रसाद मिश्र का कहानी-उपन्यास लेखन का १९३४-३५ से १९५५ तक का कालखण्ड ऐसा था, जिसके बिना 'प्रेमचंदोत्तर प्रगतिशील-लेखन', उनकी चर्चा के बिना अधूरा रहता है। यही नहीं, मिश्रजी, अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा और यशपाल के साथ हिन्दी- 'लखनऊ के कथाकार-चतुष्ट्य' को अत्यन्त तत्परता से प्रक्षेपित कर रहे थे। परन्तु अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण विडंबना है कि १९५५ के बाद लखनऊ के हिन्दी कथा-साहित्य में तो उनका नाम और लेखकीय-अवदान को अनु-उल्लेखनीय करके लखनऊ की हिन्दी कथात्रयी जैसा पद जिस तरह से हिन्दी जगत में प्रक्षेपित किया गया वह शर्मनाक है, और तो और लखनऊ की नगरीय-आंचलिकता के उनके उपन्यास 'तस्वीरें और साये' का भी नाम लेने की जरूरत नहीं महसूस की गई। परन्तु जैसा कि गंगाप्रसाद मिश्र ने कहा है- "सन् १९३४ से अब तक बराबर लिखता रहा....लखनऊ में कम, झाँसी बलरामपुर, रामपुर, बस्ती, सुल्तानपुर, फैजाबाद, रायबरेली और गोंडा ऐसी जगहों में जीवन के २१ वर्ष कट गए, जो कृतित्व के बल पर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करने के दिन थे। अपनी लगन के कारण केवल लिखता रहा...मेरे अनुभव में विविधता आयी, पर मैं किसी गुट में शामिल होकर न तो उछाला जा सका और न ऐसी पत्रिकाओं और प्रकाशकों से जुड़ पाया, जो मेरी रचनाओं का परिचय नित्य प्रति बढ़ती पाठकों की संख्या से करवाते। फलस्वरूप मेरी

अनेक अच्छी रचनाओं की अपने ही समय में नहीं, आलोचकों की दृष्टि में भी वही स्थित हो गई कि- 'जंगल में मोर नाचा किसने देखा'....अवकाश ग्रहण करने के बाद होश आया तो यह सत्य मुझ पर उजागर हुआ कि विज्ञापन के इस युग में कितने बहुमूल्य वर्ष मैंने खो दिए। ४४ वर्षों के बीच लिखे हजारों पृष्ठों के लेखन के बावजूद, मुझे पाठकों और साहित्यकारों को अपना परिचय देना है।"[20]

१.१० निष्कर्ष

अमृतलाल नागर और गंगा प्रसाद मिश्र दोनों ही लखनऊ के ऐसे साहित्यकार रहे हैं, जिन्होंने अपने बाल्यकाल से ही लखनऊ और उसके जन-जीवन को बहुत नजदीक से देखा और आत्मसात किया है। परन्तु दोनों के लखनऊ को प्रतिबिंबित करने का कथा-परिक्षेत्र लखनऊ का होते हुए भी परस्पर भिन्न है। अमृतलाल नागर नवाबी-दौर के पुराने लखनऊ के कथाकार हैं। उनका कथा-परिक्षेत्र लखनऊ से सीतापुर जाने वाली रेलवे लाइन के पश्चिमी का है। इसके विपरीत गंगाप्रसाद मिश्र का कथा-परिक्षेत्र लखनऊ से सीतापुर जाने वाली रेलवे लाइन के पूरब का और विशेष रूप से १८५७ के बाद की बसावटों का लखनऊ है। उपर्युक्त दोनों कथाकारों के कथा-साहित्य में यह परिक्षेत्र उसका परिवेश और उसके पात्र और चरित्र, उसका वातावरण आदि समग्रता में लेकर आते हैं। परन्तु बहुतायत में यह माना जाता है कि नागरजी ही लखनऊ को प्रतिबिंबित करने वाले एकमात्र साहित्यकार हैं। वास्तविकता यह है कि गंगाप्रसाद मिश्र के कथा-परिक्षेत्र के लखनऊ को उनके साहित्य में पढ़ें-जाने बिना तो नहीं जाना जा सकता तो केवल नागरजी के कथा-साहित्य से संपूर्ण लखनऊ से परिचित हो लेना एक भ्रम और छलावे से अधिक कुछ नहीं होगा!

अतः अमृतलाल नागर के कथा-साहित्य के साथ ही गंगाप्रसाद मिश्र के कथा-साहित्य को भी पढ़ना एक अनिवार्यता है।

१.११ सन्दर्भ

१. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ - संपादक- स्व. चतुर्वेदी द्वारिका प्रसाद शर्मा तथा पण्डित तारिणी, पृ. ११५

२. Sanskrit - English Dictionary, Page १५४, edi- good and C. L. Karve, Prasad Prakashan, Poona

३. हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य, डाँ. प्रेम भटनागर, संस्करण १९६८

४. आक्सफोर्ड डिक्शनरी, पृ. १२, ५८

५. The Anatomy of Poetry- Margaret Boolton, page ०८

६. अमृतलाल नागर : नीर क्षीर अंक, पृ. २५

७. भूख (उपन्यास)- अमृतलाल नागर, पृ. ५३

८. अमृतलाल नागर रचनावली, खण्ड- ८, संपादक- डॉ. शरद नागर, पृ. १८

९. वही, पृ. ३३

१०. बूँद और समुद्र- अमतलाल नागर, पृ. १६०

११. वहीं, पृ. १०५

१२. नाच्यौ बहुत गोपाल : अमृतलाल नागर, पृ. ७७

१३. मानस का हंस : अमृतलाल नागर, पृ. ११८

१४. गंगाप्रसाद मिश्र ग्रंथावली, भाग ३, पृष्ठ ६१

१५. तस्वीरें और साये, गंगाप्रसाद मिश्र, पृ. ३४०

१६. वहीं, पृ. ३४०

१७. 'बूँद और समुद्र' की भूमिका- अमृतलाल नागर, पृ. ०५

१८. वहीं, ०५

१९. गंगाप्रसाद मिश्र ग्रन्थावली, खण्ड- ४, उपन्यास की भूमिका, पृ. २८६

२०. उत्तर प्रदेश, जनवरी, १९९४ में प्रकाशित, बन्धु कुशावर्तीजी के लेख से